International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN :2581-9925, Impact Factor: 7.555, Volume 07, No. 02(III), April- June, 2025, pp. 12-18

भारतीय दार्शनिक परंपरा में आजीवक मत की ऐतिहासिक समीक्षा एवं दार्शनिक बहुलता और नैतिक चिंतन पर इसका प्रभाव : एक अवलोकन

राहुल मीना*
शोधार्थी, दर्शनशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।
*Corresponding Author: rmrahulmeena000@gmail.com

सार

यह शोध आलेख छठी शताब्दी ईसा पूर्व के भारतीय दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में आजीवक मत की भूमिका को विश्लेषित करता है, जो उस काल की श्रमण परंपरा में एक विशिष्ट किन्तु उपेक्षित विचारधारा रही है। मक्खलि गोसाल द्वारा प्रतिपादित आजीवक दर्शन का मूल आधार नियतिवाद (Determinism) था, जो यह मानता था कि संसार की समस्त घटनाएँ पूर्व निर्धारित हैं और मनुष्य का कर्म या प्रयास उसमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। यह दृष्टिकोण उस समय के बौद्ध, जैन और वैदिक कर्मवाद से भिन्न और विरोधी था। इस आलेख में आजीवकों के प्रमुख विचारों, उनके चिंतकों, तथा छठी शताब्दी ई.पू. में उनके बौद्धिक प्रभाव का विस्तार से विवेचन किया गया है। साथ ही यह भी विश्लेषण किया गया है कि किस प्रकार उन्हें धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक कारणों से इतिहास में हाशिए पर डाल दिया गया। आलेख यह तर्क प्रस्तुत करता है कि जैसे यूनानी दर्शन में उपेक्षित मतों का पुनर्मूल्यांकन हुआ, वैसे ही आजीवक मत को भी भारतीय दार्शनिक इतिहास में स्थान मिलना चाहिए। यह न केवल दार्शनिक बहुलता की रक्षा है, बल्कि आधुनिक नैतिक विमर्शों के लिए भी प्रासंगिक है।

शब्दकोश: *आजीवक मत, मक्खलि गोसाल, नियतिवाद, श्रमण परंपरा, दार्शनिक बहुलता, दार्शनिक पुनर्मूल्यांकन, कर्मवाद, नियति बनाम स्वतंत्र इच्छा।*

प्रस्तावना

छठी शताब्दी ईसा पूर्व भारतीय उपमहाद्वीप के बौद्धिक इतिहास में एक ऐसा कालखंड था जब दार्शनिक क्रांति ने सामाजिक, धार्मिक और नैतिक दृष्टिकोणों को पूरी तरह से चुनौती दी। यह वह समय था जब श्रमण परंपरा अपने उत्कर्ष पर थी और वैदिक कर्मकांड से असंतुष्ट विचारकों ने नए दार्शनिक पथों कि खोज की। बुद्ध, महावीर, अजीत केशकंबलिन और मक्खलि गोसाल जैसे मनीषियों ने उस कालखंड में भारतीय चिंतन को नई दिशा दी। इन्हीं में से एक विशिष्ट और अत्यंत अनदेखा किया गया मत था– आजीवक दर्शन।

आजीवक मत के प्रणेता मक्खलि गोसाल थे, जिन्होंने अपने समय में एक अत्यंत तार्किक, परंतु कट्टर नियतिवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। इस मत का आधार यह था कि जीवन की प्रत्येक घटना पूर्वनियत है, और मनुष्य की कोई भी नैतिक या धार्मिक क्रिया उसे परिवर्तित नहीं कर सकती। इस विचार ने उस समय की नैतिकता, कर्म–सिद्धांत, और मोक्ष की अवधारणाओं को बुनियादी रूप से चुनौती दी।

भारत में जहाँ बौद्धों ने करुणा और मध्यमार्ग, और जैनों ने अहिंसा एवं तपस्या को नैतिकता का केंद्र बनाया, वहीं आजीवकों ने स्पष्ट रूप से कहा कि "कुछ भी तुम्हारे वश में नहीं है।" यह विचार जितना कट्टर प्रतीत होता है, उतना ही गहरा भी है– क्योंकि यह उस समय की नैतिक बहस को एक निर्णायक ध्रुव प्रदान करता है– क्या नैतिकता विकल्प पर आधारित है, या नियति पर?

इस शोध लेख का उद्देश्य है– आजीवक मत को पुनः विमर्श में लाना और उसका स्थान भारतीय दार्शनिक बहुलता और नैतिक विकास के संदर्भ में पुनःस्थापित करना। साथ ही इस लेख में हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि क्यों आजीवकों को ऐतिहासिक विमर्श में वह सम्मान नहीं मिला जिसके वे अधिकारी थे। इस संदर्भ में यूनानी दार्शनिक क्रांतियों से भी तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाया जाएगा, जिससे यह दिखाया जा सके कि भारत में भी "दार्शनिक पुनर्मूल्यांकन" की उतनी ही आवश्यकता है जितनी पश्चिम में सुकरात–प्लेटो–आर्स्ट्रोटल के संदर्भ में की गई।

इस लेख में आजीवक मत की प्रमुख अवधारणाएँ, उसका छठी शताब्दी ईसा पूर्व के विचार जगत में योगदान, और आधुनिक नैतिक विमर्श में उसका पुनर्पाठ प्रस्तुत किया जाएगा।

आजीवक दर्शन में विभिन्न विचार और चिंतक

आजीवक मत भारतीय दर्शन के उन दुर्लभ और कम समझे गए पथों में से एक है, जो छठी शताब्दी ई. पू. में भारत की दार्शनिक और नैतिक चेतना को गहराई से प्रभावित करता है। इस मत के मुख्य प्रवर्तक मक्खलि गोसाल (या गोशालक) थे, जिनका उल्लेख बौद्ध और जैन साहित्य में भी कई स्थलों पर मिलता है। यद्यपि आजीवकों का कोई स्वतंत्र ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं है, लेकिन बौद्ध 'संयुक्त निकाय', जैन 'भगवती सूत्र' तथा ब्राह्मण ग्रंथों में इनके विचारों की झलक स्पष्ट रूप से मिलती है।

मक्खलि गोसाल : जीवन और दर्शन

गोसालक का प्रारंभिक जीवन रहस्यपूर्ण रहा है, परन्तु जैन परंपरा के अनुसार वह महावीर के समकालीन थे और कुछ समय तक उनके शिष्य भी रहे। किन्हीं कारणों से मतभेद होने के पश्चात् गोसालक ने अपनी स्वतंत्र दार्शनिक परंपरा की स्थापना की, जिसे आजीवक मत कहा गया। इस परंपरा का मुख्य आधार था– नियतिवाद (क्मजमतउपदपेउ)।

प्रमुख विचार

आजीवक दर्शन का सबसे केंद्रीय सिद्धांत था "नियति" जिसके अनुसार सृष्टि में हर घटना पहले से ही निश्चित और अपरिवर्तनीय है। मानव का कोई कर्म, तप, व्रत, या भक्ति इस पूर्वनिर्धारित क्रम को नहीं बदल सकता। उनके अनुसार, संसार में जितनी आत्माएँ हैं, वे सभी एक निश्चित चक्र से गुजर रही हैं– चाहे वह जन्म हो, दुःख हो या मुक्ति– सब पूर्वनियत है। इस दृष्टिकोण को उन्होंने इस प्रकार परिभाषित किया'

"संसार में जो कुछ होता है, वह न तो कर्म का फल है, न ईश्वर की इच्छा, यह सब मात्र नियति की योजना है।"

आजीवकों ने पुनर्जन्म को स्वीकार किया, लेकिन यह माना कि मुक्ति एक स्वाभाविक अवस्था है, जो समय आने पर स्वयं घटित होती है– उसमें किसी नैतिक प्रयास की आवश्यकता नहीं। यह विचार उस समय प्रचलित कर्म–सिद्धांत के पूर्ण विरोध में था, जो कि बौद्धों, जैनों और वैदिक परंपराओं का आधार रहा।

अन्य विचारधाराएं और परवर्ती विविधताएँ

गोसालक के अनुयायियों में कुछ ने उनके कठोर नियतिवाद को स्वीकारा, परंतु समय के साथ–साथ आजीवक समुदाय में विविध मत भी उभरने लगे। कुछ विचारकों ने "नियतिवाद और स्वेच्छा" के मध्य संतुलन की बात कही, जबकि अन्य ने नैतिक आचरण के औपचारिक रूपों को सहारा देने का प्रयास किया।

हालाँकि हमें इन अन्य विचारकों के नाम और ग्रंथ स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं हैं, फिर भी यह स्पष्ट है कि आजीवक परंपरा में भी वैचारिक विविधता और बहसें चलती थीं– जो उन्हें एक "स्थिर संप्रदाय" के बजाय "विचारशील दार्शनिक परंपरा" बनाती है। इस प्रकार, मक्खलि गोसाल और उनके अनुयायियों का दर्शन भारतीय बौद्धिक परंपरा में एक ठोस एवं साहसी विचार प्रस्तुत करता है, जो आज के "नैतिक स्वतंत्रता" और "आत्मनिर्णय" की बहसों में भी प्रासंगिक बनता है। नियतिवाद की यह कट्टर व्याख्या केवल धार्मिक दृष्टि से नहीं, बल्कि दार्शनिक विमर्श में एक क्रांतिकारी हस्तक्षेप थी।

छठी शताब्दी ई.पू. में भारतीय दार्शनिक विकास में आजीवक की भूमिका–

छठी शताब्दी ईसा पूर्व भारतीय दर्शन के इतिहास में एक युगांतरकारी काल था, जिसे अक्सर "दर्शन का प्रथम पुनर्जागरण" भी कहा जाता है। इस काल में वैदिक कर्मकांड के विरुद्ध उठी श्रमण परंपरा ने समाज को नैतिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक दृष्टि से झकझोर दिया। यह वही समय था जब महावीर, बुद्ध, मक्खलि गोसाल, अजित केशकंबलिन आदि विचारकों ने भारतीय चेतना को नए विचार–मार्ग दिए। इस बौद्धिक क्रांति में आजीवक मत की भूमिका निर्णायक थी, यद्यपि उसे बाद में अपेक्षित मान्यता नहीं मिली।

श्रमण आंदोलन ने वेदों की सर्वोच्चता, यज्ञों की उपयोगिता और ब्राह्मणत्व की बौद्धिक सत्ता को चुनौती दी। इस आंदोलन में बौद्ध और जैन मत ने जहाँ अहिंसा, तप और करुणा के माध्यम से मोक्ष का मार्ग प्रस्तुत किया, वहीं आजीवक दर्शन ने इन सबसे बिल्कुल भिन्न और कहीं अधिक कट्टर दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। मक्खलि गोसाल ने यह तर्क दिया कि कर्म, तपस्या या नैतिकता के माध्यम से मुक्ति नहीं मिलती, क्योंकि जीवन में जो कुछ होता है वह सब पूर्वनियत है।

यह विचार उस समय प्रचलित हर प्रमुख सिद्धांत के विरुद्ध था। इस प्रकार आजीवक मत ने दर्शन की बहस में एक "वैकल्पिक दृष्टिकोण" जोड़ा, जिसने लोगों को यह सोचने पर मजबूर किया कि क्या नैतिकता स्वतंत्र इच्छा पर आधारित होती है, या किसी पूर्वनिर्धारित व्यवस्था पर?

दार्शनिक बहुलता में योगदान

इस कालखंड में भारतीय उपमहाद्वीप में दार्शनिक बहुलता (चिपसवेवचीपबंस च्सनतंसपेउ) अपने चरम पर थी। आस्तिक और नास्तिक, आत्मवाद और अनात्मवाद, नियतिवाद और विकल्पवाद– ये सभी परस्पर संवाद, विरोध और प्रतिक्रिया में निरंतर विकसित हो रहे थे। इस बौद्धिक विविधता में आजीवकों ने एक अत्यंत कट्टर और तार्किक स्वर जोड़ा, जिसने बौद्धों को मध्यमार्ग और जैनों को कठोर तप–प्रधान मोक्षमार्ग पर अधिक स्पष्टता के साथ स्थापित होने के लिए विवश किया।

उदाहरणतः बौद्ध साहित्य में गोसालक को बुद्ध के प्रतिद्वंद्वी के रूप में वर्णित किया गया है, जिससे यह सिद्ध होता है कि आजीवक मत इतना प्रभावशाली था कि बौद्धों को उनके विचारों का खंडन करना पड़ा।

नैतिक विमर्श में हस्तक्षेप

आजीवक मत ने नैतिकता के उस समय के मूलभूत स्तम्भ–कर्म–सिद्धांत– को नकारते हुए यह विचार प्रस्तुत किया कि नैतिकता का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। यह विचार अत्यंत चुनौतीपूर्ण था और इससे नैतिक निर्णय, दायित्व, और मोक्ष जैसी अवधारणाएँ गहन परीक्षण के दायरे में आ गईं। इसने उस समय के दार्शनिक विमर्श को न केवल प्रश्नातीत बनाया, बल्कि उसमें गहराई भी दी।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में आजीवक मत ने केवल एक विचारधारा नहीं, बल्कि एक दार्शनिक चुनौती पेश की; जो कि बहुलता की आत्मा होती है। उसकी उपस्थिति ने भारतीय दर्शन को केवल समृद्ध ही नहीं किया, बल्कि उसे बौद्धिक रूप से अधिक सम्यक और संतुलित बनाया। अतः यह कहा जा सकता है कि बिना आजीवकों के, भारतीय दर्शन की इस युगीन विकास यात्रा की समझ अधूरी रह जाती है।

भारतीय दर्शन में पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता– जैसे यूनानी दर्शन में हुआ–

इतिहास केवल विजेताओं का नहीं होता बल्कि वह उन स्वरों का भी होता है जिन्हें समय ने मौन कर दिया, या विचारधारात्मक वर्चस्व ने दबा दिया। भारतीय दर्शन का इतिहास भी इस दृष्टि से अपूर्ण है। जैसे पश्चिम में सुकरात, प्लेटो और अरस्तू के अतिरिक्त अन्य विचारकों को लंबे समय तक अनदेखा किया गया और पुनर्मूल्यांकन की प्रक्रिया से उन्हें वापस विचार–जगत में स्थान मिला, वैसे ही भारतीय दर्शन में भी आजीवक मत जैसे उपेक्षित पंथों को पुनः प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है।

यूनानी दर्शन और पुनर्मूल्यांकन का उदाहरण

यूनान में दर्शन का आरंभ थेल्स, हेराक्लिटस, पाइथागोरस जैसे प्रारंभिक प्रकृतिवादियों से हुआ, परंतु मुख्यधारा दर्शन में केवल सुकरात, प्लेटो और अरस्तू जैसे दार्शनिकों को लंबे समय तक सर्वोच्च स्थान दिया गया। किन्तु आधुनिक पाश्चात्य इतिहास लेखकों ने सिनिक्स (ब्लदपबे), स्टोइक्स ेजवपबे), एपिक्यूरियनों जैसे मतों और दार्शनिकों का मूल्यांकन करके यह दिखाया कि दर्शन का इतिहास कहीं अधिक बहुलतामय और विचारोत्तेजक था।

उदाहरणतः डायोजेनीज जैसे विचारकों के कट्टर निषेधवादी विचारों ने नैतिकता की नई परिभाषाएँ दीं, परंतु वे सदियों तक हाशिए पर रखे गए। बीसवीं सदी में जब उनके विचारों को पुनः पढ़ा गया, तब समझ में आया कि कैसे वे मुख्यधारा से भिन्न होकर भी उस समय के बौद्धिक विमर्श में मूलभूत योगदान दे रहे थे।

आजीवक मत– भारतीय दर्शन के डायोजेनीज

यदि हम मक्खलि गोसाल और आजीवकों की तुलना करें, तो स्पष्ट होगा कि वे भारतीय दर्शन के 'डायोजेनीज' थे– एक ऐसे विचारक जिन्होंने समकालीन नैतिकता और धर्म की धारणाओं को चुनौती दी, कट्टर और अपरंपरागत विचार रखे, और एक वैकल्पिक दर्शन प्रस्तुत किया। परंतु वैदिक और श्रमण–प्रधान विमर्शों में, आजीवकों को या तो "गलत" साबित किया गया या "भूल" गए।

यह स्पष्ट करता है कि भारतीय दार्शनिक इतिहास में पुनर्मूल्यांकन की सख्त आवश्यकता है, ताकि हम यह समझ सकें कि दर्शन केवल "सत्य की स्थापना" नहीं, बल्कि "प्रश्नों के विविध रूपों" की अभिव्यक्ति भी है।

पुनर्मूल्यांकन के लाभ

- इससे हमें भारतीय दर्शन की बहुलता और स्वतंत्र चिंतन की सच्ची गहराई समझ में आती है।
- यह वर्तमान नैतिक और दार्शनिक बहसों को ऐतिहासिक जड़ों से जोड़ता है।
- आजीवकों के नियतिवादी दृष्टिकोण को आधुनिक डिटर्मिनिज्म या साइकोलॉजिकल थ्योरीज से जोड़कर देखा जा सकता है।
- पुनर्पाठ से एक संतुलित, समावेशी और आत्म–मंथनशील दर्शन का विकास संभव है।

जैसे पश्चिमी दर्शन ने अपनी पूर्ववर्ती परंपराओं का पुनर्मूल्यांकन कर उन्हें फिर से जीवित किया, वैसे ही भारतीय दर्शन को भी आजीवकों जैसे "अदृश्य दर्शनों" का पुनः परीक्षण करना चाहिए। यह केवल ऐतिहासिक न्याय नहीं, बल्कि बौद्धिक समृद्धि की ओर एक अनिवार्य कदम है। आजीवक मत को पुनः पढ़ना, दरअसल भारतीय दर्शन को और अधिक समग्र रूप में देखने का प्रयत्न है।

क्यों आजीवकों को हमारे अध्ययन में कम महत्व मिला ?

भारतीय दार्शनिक परंपरा अत्यंत समृद्ध और विविध रही है, किंतु इसके इतिहास को लिखने और पढ़ने की प्रक्रिया में अनेक विचारधाराएँ, मत और परंपराएँ या तो उपेक्षित रहीं या जानबूझकर विमर्श से बाहर रखी गईं। आजीवक मत इसका एक प्रमुख उदाहरण है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में आजीवक मत उतना ही सक्रिय और प्रभावशाली था जितना बौद्ध और जैन दर्शन, फिर भी आज यह मुख्यधारा के पाठ्यक्रमों, ग्रंथों और चर्चाओं से लगभग अनुपस्थित है।

मूल ग्रंथों की अनुपलब्धता

सबसे पहला और व्यावहारिक कारण यह है कि आजीवकों के अपने मूल ग्रंथ कालक्रम में नष्ट हो गए। इसके विपरित बौद्ध 'त्रिपिटक' या जैन 'आगम साहित्य', आजीवकों का कोई भी स्वतंत्र ग्रंथ या व्यवस्थित लेखन आज उपलब्ध नहीं है। उनके विचार हमें केवल बौद्ध, जैन और ब्राह्मण ग्रंथों में टिप्पणियों या आलोचनात्मक वर्णनों के रूप में प्राप्त होते हैं। चूँकि यह स्रोत पूर्वाग्रही हैं, इसलिए गोसालक और उनके मत को अधिकतर नकारात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

आलोचनात्मक विरोध और दुष्प्रचार

बौद्ध और जैन ग्रंथों में गोसालक को एक "विचलित विचारक", "कृत्रिम योगी" तक बताया गया है। यह आलोचना इतनी तीव्र थी कि वह केवल वैचारिक विरोध नहीं रही, बल्कि चरित्र–हनन तक पहुँच गई। इससे यह धारणा बनी कि आजीवक मत "गंभीर दर्शन" नहीं, बल्कि "भ्रांत मार्ग" है। यही रूढ़ि आगे के अध्ययन में स्थायी रूप ले बैठी।

सामाजिक–राजनीतिक अवहेलना

बौद्ध और जैन धर्म को राजनैतिक संरक्षण प्राप्त था। सम्राट अशोक, खारवेल और गुप्तकालीन नरेशों ने इन धर्मों को संस्थागत रूप दिया। इसके विपरीत, आजीवक मत कभी भी किसी राजसत्ता का संरक्षित दर्शन नहीं बन पाया। सत्ता से दूरी ने उसके अस्तित्व को कमजोर किया, और धीरे–धीरे वह जनस्मृति से भी ओझल हो गया।

वैचारिक असुविधा

आजीवक मत का मूलभूत सिद्धांत–नियतिवाद– उस समय के नैतिक और धार्मिक विचारों के लिए असुविधाजनक था। यह मत न केवल कर्मवाद को चुनौती देता था, बल्कि मुक्त इच्छा, नैतिक जिम्मेदारी और धर्म–अनुष्ठानों की वैधता को भी नकारता था। इन विचारों से संस्थागत धर्म और सामाजिक व्यवस्था को खतरा प्रतीत हुआ, जिससे आजीवकों को हाशिये पर ढकेल दिया गया।

आधुनिक विद्वानों की उपेक्षा

पश्चिमी और भारतीय आधुनिक विद्वानों ने भी आजीवकों को अधिक महत्व नहीं दिया। इसके पीछे प्रमुख कारण हैं–

- स्रोत सामग्री की कमी,
- अन्य दर्शनों की तुलना में उनकी "नकारात्मक" छवि,
- "कर्म–सिद्धांत" और "आत्मा" की प्रचलित मान्यताओं से भिन्न विचार
- इन समग्र कारणों के चलते आजीवक मत को दार्शनिक इतिहास में वह स्थान नहीं मिल सका, जिसका वह वास्तविक रूप में अधिकारी था। यह न केवल बौद्धिक अन्याय है, बल्कि भारतीय दर्शन के बहुलतावादी चरित्र के लिए भी चुनौती है।

कैसे आजीवक ने भारतीय दार्शनिक परिप्रेक्ष्य को आकार दिया ?

भारतीय दर्शन की विशेषता उसकी दार्शनिक बहुलता में निहित है– एक ऐसी परंपरा जहाँ विरोधी विचारधाराएँ न केवल सह–अस्तित्व में रहीं, बल्कि एक–दूसरे के अस्तित्व को चुनौती देकर तार्किक गहराई और विवेकपूर्ण विमर्श को जन्म देती रहीं। इसी बहुलता की आत्मा में आजीवक दर्शन ने एक कट्टर नियतिवादी दृष्टिकोण के माध्यम से न केवल स्वतंत्र विचार का उदाहरण प्रस्तुत किया, बल्कि नैतिकता, कर्म और मुक्ति की व्याख्याओं को पुनर्परिभाषित करने के लिए मजबूर किया।

नैतिकता और नियतिवाद का द्वंद्व

आजीवक दर्शन ने यह प्रतिपादित किया कि मनुष्य की नैतिकता उसकी स्वतंत्र इच्छा का परिणाम नहीं, बल्कि एक ऐसी योजना का हिस्सा है, जो पूर्वनियत है। यह विचार उस समय की मुख्यधारा विचारधाराओं– विशेषतः बौद्ध और जैन नैतिकता के लिए एक गहन चुनौती था, क्योंकि वे दोनों ही नैतिक प्रयास और आत्म–संयम को मोक्ष का साधन मानते थे।

इस द्वंद्व ने नैतिक चिंतन में नई बहस को जन्म दिया–

- क्या हम नैतिक निर्णयों के लिए उत्तरदायी हैं, यदि सब कुछ पूर्वनियत है?
- क्या नैतिक व्यवहार केवल सामाजिक अनुशासन है या आत्म–विकास का साधन?

इन प्रश्नों ने भारतीय दर्शन को केवल "धार्मिक प्रवचन" से ऊपर उठाकर उसे तार्किक आत्मावलोकन की दिशा में धकेला।

संवाद परंपरा और दार्शनिक स्पर्धा

आजीवकों की उपस्थिति ने तत्कालीन धार्मिक और दार्शनिक नेताओं को अपने विचारों को और अधिक स्पष्ट, प्रमाणिक और व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी। बौद्ध 'सुत्त पिटक', जैन 'भगवती सूत्र', और अनेक उपनिषदों में आजीवकों के विचारों का खंडन किया गया, जिससे यह स्पष्ट होता है कि वे संवाद और विचार–विनिमय की एक सशक्त प्रेरक शक्ति थे।

इस प्रकार आजीवकों ने तर्क परंपरा और वाद–विवाद की संस्कृति को न केवल पोषित किया, बल्कि उसे दर्शन के अभिन्न अंग के रूप में स्थापित करने में सहायता की।

परवर्ती दर्शनों में प्रभाव

यद्यपि आजीवक दर्शन ग्रंथ रूप में संरक्षित नहीं रहा, फिर भी उसके विचार बाद के कई दर्शनों में प्रतिध्वनित होते हैं–

- कर्मफल और नियति की अवधारणाएँ 'गीता', 'योगवाशिष्ठ', और कई पुराणों में जटिल रूपों में प्रकट होती हैं।
- नियतिवाद और आत्म–नियंत्रण के बीच संघर्ष आधुनिक भारतीय विचारकों जैसे विवेकानंद, अरविंद, रामकृष्ण परमहंस आदि के चिन्तन में भी परोक्ष रूप से मौजूद है।
- कुछ आधुनिक मनोवैज्ञानिक और अस्तित्ववादी दृष्टिकोण भी गोसालक के उस मूल कथन की छाया लिए हुए हैं– "जो कुछ होना है, वह होकर रहेगा।"

आधुनिक दर्शन में प्रासंगिकता

आज का मानव जिस नैतिक अनिश्चय, संवेदनात्मक उलझन और स्वतंत्रता बनाम नियति के द्वंद्व में जी रहा है, वहाँ आजीवक मत की पुनर्व्याख्या अत्यंत प्रासंगिक हो जाती है। क्या हम अपने निर्णयों के पूर्ण स्वामी हैं? या हम किसी अदृश्य सामाजिक–सांस्कृतिक ढाँचे के भीतर ही सीमित हैं? इस परिप्रेक्ष्य में गोसालक की कठोर, किंतु स्पष्ट अवधारणाएँ हमें नई दृष्टि दे सकती हैं।

इस प्रकार, आजीवक मत ने भारतीय दर्शन को केवल एक विचार नहीं, बल्कि एक दार्शनिक चुनौती दी– जिसने नैतिकता, कर्म और मुक्ति की पारंपरिक धारणाओं को पुनः सोचने पर विवश किया। उसकी कट्टरता भारतीय दर्शन के संतुलन के लिए उतनी ही आवश्यक थी जितनी सहिष्णुता। और यही उसकी सबसे बड़ी दार्शनिक देन है।

निष्कर्ष

आधुनिक भारतीय दर्शन की समझ तभी पूर्ण हो सकती है जब हम उसकी उन धाराओं को भी आत्मसात करें जिन्हें समय, सत्ता और समाज ने हाशिये पर धकेल दिया। आजीवक दर्शन ऐसी ही एक दार्शनिक परंपरा है, जिसने छठी शताब्दी ईसा पूर्व के भारत में नैतिकता, नियति, कर्म और मोक्ष जैसे जटिल विषयों पर एक अद्वितीय और सशक्त दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

मक्खलि गोसाल द्वारा प्रतिपादित यह मत उस युग में सामने आया, जब भारतीय समाज वैदिक कर्मकांडों से उकताया हुआ था और श्रमण आंदोलन के रूप में वैकल्पिक चेतना आकार ले रही थी। आजीवक मत ने इस चेतना में विशिष्टता का सूत्रपात करते हुए यह उद्घोष किया कि संसार में जो कुछ होता है वह पूर्वनियत है, और मनुष्य का नैतिक या धार्मिक प्रयास केवल भ्रम है। यह विचार यद्यपि कठोर प्रतीत होता है, परंतु उसने तत्कालीन दर्शन को झकझोरने और गहराई से आत्मावलोकन करने की दिशा में अग्रसर किया।

जहाँ बौद्ध और जैन दर्शनों ने नैतिक कर्म और तप को मुक्ति का मार्ग माना, वहीं आजीवक दर्शन ने इन सब पर तीव्र प्रश्नचिह्न लगाए। इसके कारण ही वह दर्शन के इतिहास में एक विचारशील प्रतिरोध (intellectual resistance) के रूप में उभरा। वह मत जिसने यह दिखाया कि दर्शन केवल समाधानों की खोज नहीं है, बल्कि प्रश्नों की जटिलता को स्वीकार करना और असहमतियों को स्थान देना भी उतना ही आवश्यक है।

इस शोध में यह स्पष्ट किया गया है कि–

- आजीवक मत दार्शनिक बहुलता आत्मा का एक अनिवार्य घटक रहा है।
- उसने नैतिकता, कर्म और नियति जैसे मूल विषयों पर एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।
- छठी शताब्दी ई.पू. की दार्शनिक क्रांति में उसका स्थान उतना ही महत्वपूर्ण था जितना बुद्ध या महावीर का।
- परंतु राजनीतिक संरक्षण, ग्रंथों की अनुपलब्धता और वैचारिक असहजता के कारण उसे हमारे शैक्षणिक और बौद्धिक विमर्शों में उचित स्थान नहीं मिला।
- आज के नैतिक, सामाजिक और अस्तित्वगत प्रश्नों के संदर्भ में आजीवक मत की पुनर्पाठ और पुनर्मूल्यांकन की नितांत आवश्यकता है।

समकालीन प्रासंगिकता

आज जब समाज नैतिक भ्रम, व्यक्तिगत असमर्थता, और स्वतंत्रता बनाम नियति के द्वंद्व से गुजर रहा है, तब मक्खलि गोसाल की कट्टर, किन्तु तर्कसंगत दृष्टि हमें एक वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रदान करती है। यह दृष्टिकोण हमें यह सोचने पर विवश करता है कि क्या नैतिकता केवल स्वेच्छा है, या नियति के अधीन एक स्वप्न? आजीवक मत का पुनर्मूल्यांकन न केवल अतीत को सम्मान देना है, बल्कि वर्तमान और भविष्य की नैतिक दिशा को भी स्पष्ट करना है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सांकृत्यायन, राहुल (1951), दर्शन और चिंतन, बनारस : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्।
2. चट्टोपाध्याय, देबिप्रसाद (1976), भारतीय दर्शन की भूमिका, कोलकाता : पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस।
3. जैन, लक्ष्मीनारायण (2004), श्रमण परंपरा का इतिहास, जयपुर : राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।
4. भगवती सूत्र (जैन आगम), संपादक– आचार्य तुलसी।
5. संयुक्त निकाय (बौद्ध त्रिपिटक), पालि टेक्स्ट सोसायटी संस्करण।
6. Basham, A.L. (1951). History and Doctrines of the Ajivikas. London: Luzac & Co.
7. Olivelle, Patrick. (1993). The Ājīvikas: Ascetics and Brahmins in Ancient India. In Ascetics and Brahmins, Oxford University Press.
8. Potter, Karl H. (Ed.). (1977–1990). Encyclopedia of Indian Philosophies (Vol. I–IV). Princeton University Press.
9. Radhakrishnan, S. (1929). Indian Philosophy (Vol. I & II). Oxford University Press.
10. Dasgupta, Surendranath. (1922–1955). A History of Indian Philosophy (Vol. I–V). Cambridge University Press.

❖◆❖